विश्वव्यापी आर्थिक संकट

कौन है इसका जिम्मेदार

देश-विदेश

पुस्तिका-1

देश-विदेश पुस्तिका-1
जुलाई - 2009

विश्वव्यापी आर्थिक संकट : कौन है इसका जिम्मेदार

सम्पादक
उमा रमण

सहयोग राशि
10 रुपये

सम्पर्क सूत्र
देश विदेश
502/10, एस-1, साँई कॉम्पलेक्स
ब्लॉक-डी, गली नं. - 1
अशोक नगर, शाहदरा,
दिल्ली - 110093
फोन : 09818622601
E-mail: deshvidesh@rediffmail.com

मुद्रक
प्रोग्रेसिव प्रिंटर्स
ए-21, झिलमिल इंडस्ट्रियल एरिया
जी.टी. रोड, शाहदरा, दिल्ली-95

उमा रमण द्वारा एस-1 साँई कॉम्पलेक्स, 502/10 अशोक नगर, शाहदरा, दिल्ली - 110093 से प्रकाशित

विषय सूची

भूमिका 05
पूँजी का बदलता चरित्रः
आधुनिक इतिहास पर एक सरसरी नजर 14
सटोरिया पूँजी का चरित्र 19
साम्राज्यवादी वैश्वीकरणः
संकट को भारत पर थोपना और उसके नतीजे 22
आखिर विकल्प क्या है? 29

भूमिका

आज पूरी दुनिया एक विकराल और विनाशकारी आर्थिक संकट के भँवर में फँसी हुई है। इस अभूतपूर्व, विश्वव्यापी महामन्दी के परिणामस्वरूप दुनियाभर में अरबों-खरबों की सम्पत्ति स्वाहा हो गयी, लाखों लोगों की कमाई शेयर बाजार में डूब गयी, लाखों छोटे-बड़े कल, कारखाने ठप्प हो गये और करोड़ों लोगों को रोजी-रोजगार से हाथ धोना पड़ा। पूँजीवाद के बुढ़ापे की इस असाध्य बीमारी ने कुल मिलाकर कितनी भारी तबाही मचाई है, इसका अन्दाजा लगाना मुमकिन नहीं।

सितम्बर 2008 में एक विशाल अमरीकी निवेशक बैंक लेह्मन ब्रदर्स दिवालिया हो गया। इसके पहले मई 2008 में जब बियर स्टर्न बैंक डूबने लगा तो अमरीकी सरकार ने उसे आर्थिक मद्द देकर दिवालिया होने से बचा लिया था। लेकिन 158 साल पुराने लेह्मन ब्रदर्स को, जिस पर 613 अरब डॉलर का कर्ज था, सरकार ने डूब जाने दिया। दुनिया के दूसरे बैंकों ने भी उसके अधिग्रहण की जाखिम मोल नहीं ली। उसके 25 हजार कर्मचारी बेरोजगार हो गये जिनमें से 2300 भारत में कार्यरत थे। इस देत्याकार सूदखोर की तबाही के चलते वित्तीय मकड़जाल में शामिल सभी बैंकों, बीमा कम्पनियों और सटोरियों के पाँव के नीचे की जमीन खिसक गयी। कुछ ही दिन बाद दो बड़े डायनासोर निवेशक बैंक मेरिल लिंच और बीमा कम्पनी ए. आई. जी. (अमरीकन इन्टरनेशनल ग्रुप) भी दिवालियापन के कगार पर पहुँच गये। अगर ये डूब जाते तो अमरीकी वित्तीय व्यवस्था ताश के महल की तरह भहरा कर गिर जाती।

18 सितम्बर को फेडरल रिजर्व के अध्यक्ष और अमरीकी वित्त मन्त्री अमरीकी संसद को बताया कि अमरीकी वित्त व्यवस्था के पूरी तरह विघटित होने में कुछ ही दिन शेष बचे हैं, जो केवल अमरीका को ही नहीं बल्कि दुनियाभर को अपने चपेट में ले लेगा। वित्तपतियों और सटोरियों द्वारा लायी गयी इस तबाही से वित्तीय ढाँचे

को बचाने के लिए उन्होंने 700 अरब डॉलर की आपातकालीन योजना संसद में रखी। इसका मकसद दिवालिया हो रही कम्पनियों की तिजोरी में पड़े बन्धक पत्रों (जहरीले रद्दी) की सरकारी खरीद करके उन्हें बचाना था। संसद ने इस योजना को खारिज कर दिया।

25 सितम्बर को राष्ट्रपति बुश ने अमरीकी अर्थव्यवस्था को आर्थिक महाविपत्ति से बचाने के लिए संसद से राहत पैकेज मंजूर करने की सिफारिश की। 2 अक्टूबर को संसद ने वित्तपतियों और सटोरियों को बचाने के लिए 700 अरब डॉलर की मंजूरी दी।

अमरीकी संसद द्वारा स्वीकृत यह एकमुश्त राशि जो भारत के सकल घरेलू उत्पाद का 70 फीसदी है, अमरीकी वित्तीय ढाँचे को बचाने पर खर्च की गयी कुल राशि का एक छोटा अंश ही है। बैंको के बड़े कर्जों की गारन्टी के लिए सरकार ने 1500 अरब डॉलर की पेशकश की है और बैंकों में जमा धन पर बीमा की राशि भी बढ़ा दी। न्यूयार्क टाइम्स का अनुमान है कि इस राहत पैकेज के साथ-साथ फैनी मेई और ेडी मैक, बियर स्टर्न और ए. आई. जी. जैसी कम्पनियों को दिवालिया होने बचाने तथा सट्टेबाजी के उपकरण, कर्जों और जमा राशि की गारंटी पर अमरीकी सरकार का कुल खर्च लगभग 5100 अरब डॉलर बैठेगा। यह राशि भारत के सकल घरेलू उत्पाद की 5 गुनी है।

बैंको में नकदी की कमी के चलते उधारी का कारोबार ठहर गया जिससे फवित्तीय हिमयुगय की हालत पैदा हो गयी। बैंकों में सीधे नकदी झोंकने के लिए अमरीका, यूरोप और जापान की सरकार ने अपने-अपने प्रमुख बैंकों के मालिकाना शेयर खरीदने का फैसला किया। यह एक प्रकार का आंशिक राष्ट्रीयकरण है जिसके लिए एक आजकल एक जुमला उन देशों में काफी लोकप्रिय हुआ है-'मुनाफे का निजीकरण, घाटे का सामाजीकरण'। 2008 में अमरीका के अधिकांश बड़े बैंकों का दिवाला पिट गया था। इसीलिए वहाँ भारी पैमाने पर विलय और अधिग्रहण हुआ था। वाशिंगटन म्यूचुअल और बियर स्टर्नस को जे. पी. मोर्गन ने खरीदा। कन्ट्रीवाइड और मेरिल लिंच का बैंक ऑफ अमरीका में विलय हुआ। वेचोविया को वैल्सफॉरगो ने अधिग्रहित किया। बन्धक पत्रों, कर्जों और सट्टेवाजी के दूसरे वित्तीय उपकरणों के चलते बैंको को कुल कितना नुकसान हुआ इसका अनुमान नहीं लगाया जा सकता जो बैंक डूब गये या जिनको किसी अन्य बैंक ने अधिग्रहित किया उनकी

परिसम्पत्तियों की कीमत घटकर केवल 10-20 फीसदी रह गयी। लेकिन अभी तक इस संकट को अमरीकी वित्तीय क्षेत्र का अन्दरूनी मामला ही समझा जाता रहा है।

जब अमरीकी संसद ने राहत पैकेज की घोषणा की, तो पूरी दुनिया को इस आर्थिक संकट की गम्भीरता का अहसास हुआ। वैश्वीकरण के तहत 'पूँजी के मुक्त प्रवाह' का जो ढाँचा साम्राज्यवादी समूह ने खड़ा किया था उसी ने इसे 'अमरीकी वित्तीय महामारी का मुक्त प्रवाह' करके दुनियाभर में फैला दिया। हर कहीं शेयर बाजारों के सूचकांक धराशायी होने लगे और एक-एक करके बैंक दिवालिया होने लगे। हर देश में वित्तीय जोड़-तोड़ करके हर कीमत पर बैंकों में नकदी उड़ेलकर उनको बचाने का सरकारी प्रयास तेज हो गया। लेकिन संकट हल नहीं हुआ क्योंकि राहत के लिए मिले धन को नये कारोबार में लगाकर जाखिम उठाने के बजाय बैंको ने अपनी सेहत सुधारने की चिंता में नकदी की जमाखोरी और सरकारी प्रतिभूतियों की खरीद शुरू कर दी। उधार की कमी के चलते माल और सेवाओं के उत्पादन में लगी वास्तविक अर्थव्यवस्था भी मन्दी की गिरफ़्त में आ गयी।

वित्तीय क्षेत्र से शुरू हुआ संकट पूरी अर्थव्यवस्था को अपनी चपेट में लेने लगा।

'अनुमान है कि 2009 में अमरीकी बजट घाटा 1186 अरब डालर तक पहुँच जायेगा क्योंकि बैंको और ऑटो इन्डस्ट्री को संकट से उबारने के लिए सरकार ने बेतहाशा धन खर्च किया। दूसरी ओर मन्दी के कारण टैक्स वसूली और सरकारी आय में भारी कमी आयी है। यह घाटा सकल घरेलू उत्पाद का 8-9 फीसदी है जो दूसरे विश्वयु(के बाद सबसे ज्यादा है। यूरोप और जापान की भी यही हालत है।

'अमरीकी निजी कम्पनियों ने दिसम्बर 2008 में 7,00,000 लोगों को नौकरी से निकाला। पिछले 60 वर्षों के भीतर यह सबसे बड़ी छँटनी है जो किसी की भी कल्पना से बाहर है। इसके पहले नवम्बर में 5,35,000 लोगों को नौकरी से हाथ धोना पड़ा था। मन्दी के कारण 2008 में अमरीका में कुल 26 लाख लोगों का रोजगार छिन गया। यह सिलसिला आज भी जारी है।

'स्पेन में 30 लाख लोग बेरोजगार हैं और इससे भी बुरे दिन आने वाले हैं। यूरोपीय कमीशन ने घोषणा की है कि दिसम्बर 2008 में यूरो का इस्तेमाल करने वाली 15 अर्थव्यवस्थाऐं संकटग्रस्त थी जहाँ बेरोजगारी और मुद्रास्फीति दोनों ही बढ़

रही है।

'बैंको से उपभोक्ताओं को उधार न मिलने के चलते साम्राज्यवादी देशों की घरेलू माँग में कमी आयी है जिसके कारण हवाई यात्रा और होटल से लेकर कम्प्यूटर, कार और कपड़े तक की बिक्री घट गयी है। दुनिया की बड़ी-बड़ी कम्पनियों ने मन्दी से प्रभावित होने की निराशाभरी घोषणाएँ की हैं। कर्ज बढ़ाकर माँग को टिकाए रखने के लिए बैंक ऑफ इग्लैण्ड ने अपनी व्याज दर 2 फीसदी से घटाकर डेढ़ फीसदी कर दी है जो उसके 300 वर्षों के इतिहास में सबसे कम है। बैंक ऑफ जापान ने तो व्याज दर को घटाते-घटाते उसे 0.1 फीसदी (हजार पर एक) तक पहुँचा दिया। यूरोपीय संघ ने भी व्याज दर में कटौती की घोषणा की है।

'जर्मनी में घरेलू और विदेशी माँग गिरने के कारण नवम्बर में मैनुफैक्चरिंग की माँग सिकुड़ गयी और निर्यात में अभूतपूर्व कमी आयी है।

'अमरीका में उपभोक्ताओं की खरीददारी सकल घरेलू उत्पाद का 70 फीसदी है जो तेजी से घट रही है। अमरीकी माँग में गिरावट के चलते दुनियाभर की निर्यातोन्मुखी अर्थव्यवस्थाएँ जो अमरीकी माँग पर निर्भर थीं, मन्दी की चपेट में आ गयी हैं।

भारतीय शासक वर्ग, उसके जरखरीद बुि(जीवी और मीडियाकर्मी लोगों से लगातार झूट बोलते रहे कि भारतीय अर्थव्यवस्था पर अमरीकी संकट का कोई असर नहीं होगा। लेकिन अन्ततः पाप उनके सर चढ़कर बोलने लगा। जिस शेयर सूचकांक को विकास का पैमाना बताकर लोगों को अब तक भर्माया गया था वही सबसे पहले इसकी चपेट में आया। 2008 की शुरूआत के 20,000 अंक से लुढ़ककर शेयर सूचकांक अक्टूबर में आधे से भी कम रह गया। इस दौरान विदेशी निवेशक 14 अरब डॉलर भारत से लेकर चम्पत हो गये। सेबी ने तो पार्टीसिपेटरी नोट्स (पी. नोट्स) पर रोक लगाकर पिछले वर्ष बेनामी सटोरियों पर जो रोक लगायी थी उसे अक्टूबर में हटा दिया। ताकि विदेशी सट्टेवाजों को आकर्षित किया जा सके। लेकिन यह कदम गुनाह बेलज्जत ही साबित हुआ।

सितम्बर 2008 से जनवरी 2009 के बीच कैस रिजर्व अनुपात में 4 फीसदी, रेपोरेट 3.5 फीसदी और रिवर्स रेपोरेट में कमी करके और अन्य उपायों के जरिये रिजर्व बैंक ने बैंकिंग प्रणाली में 3,00,000 करोड़ की नकदी उड़ेल दी।

इन उपायों के बावजूद भारतीय अर्थव्यवस्था लगातार संकट में फँसती गयी। अगस्त 2008 में औद्योगिक विकास दर 1.3 फीसदी तक आ गयी। सितम्बर में यह दर 4.8 फीसदी रही जो पिछले वर्ष इसी महीने 7 फीसदी थी। कई बड़ी कम्पनियों ने उत्पादन में कटौती की घोषणा की जबकि लाखों छोटे उद्यौग तबाह हो गये। अमरीकी माँग पर टिके हीरो के गहने, कपड़ा और चमड़ा उद्योग सबसे बुरी तरह प्रभावित हुए। अकेले कपड़ा उद्योग से 7 लाख मजदूरों को नौकरी से निकाला गया और लगभग 12 लाख मजदूरों के सर पर छँटनी की तलवार लटक रही है। हीरे जवाहरात के उद्योग के लगभग 13 लाख मजदूर बेरोजगार हो गये हैं, क्योंकि अब यूरोप और अमरीका में गहनों की माँग नहीं के बराबर है।

जैट ऐयरवेज ने उँफचे वेतन पाने वाले 1900 कर्मचारियों की एक रात में छँटनी की थी जिन्हें हल्ला-हंगामे के बाद वापस रख लिया था और उनके वेतन में 90 फीसदी कमी कर दी थी। अब उन्हें एक-एक करके निकाला जा रहा है।

अक्टूबर 2008 में पिछले वर्ष की घटना में दूपहिया वाहनों की बिक्री में 15 फीसदी, चार पहिया वाहनों में 9 फीसदी और व्यावसायिक गाड़ियों में 36 फीसदी की कमी हुई। इसके चलते टाटा मोटर्स, अशोक लेलेण्ड और अन्य कम्पनियों ने आंशिक तालाबन्दी करके उत्पादन कम किया। भवन निर्माण में मन्दी के चलत सीमेन्ट और स्टील की माँग में भी कमी हुई है।

'द इकोनोमिक टाइम्स का अनुमान है कि वित्तीस संकट के चलते भारत के सूचना प्राद्योगिकी और बी. पी. ओ. मे काम करनेवाले 23 लाख कर्मचारी बेकार हो जायेंगे। लेहमन ब्रदर्स डूबने के चलते 2300 भारतीय कर्मचारियों की छँटनी हुई है।

कुल लिाकर हमारे देश और पूरी दुनिया मन्दी की भयावह खबरों ओर लेखों से हर रोज अखबार भरे होते है। अर्थशक्तियों और खबरनवीशों के अधिकांश लेख तात्कालिक और सतही कारणों तक सीमित होते हैं। उनका मकसद इस व्यवस्था को मजबूत बनाने के लिए उसमें बहतरी के उपाय सुझाने से ज्यादा कुछ नहीं होता। इसीलिए वे व्यवस्थाजन्य कारणों को मिटाने के बजाय रोग के लक्षण का इलाज सुझाते हैं। पूरी दुनिया की अर्थव्यवस्थाओं को अपनी गिरफ्रत में ले लेने वाले इस सर्वग्रासी संकट के तात्कालिक और दूरगामी कारणों को इतिहास की रोशनी में समझना जरूरी है।

सवाल यह है कि पूँजीवादी समाज में बार-बार संकट क्यों आता है और हर बार पहले से ज्यादा विनाशकारी क्यों होता चला जाता है? सटोरिया पूँजी, जिसके चलते यह संकट पैदा हुआ उसका चरित्र क्या है? किन ऐतिहासिक कारणों से परजीवी, अनुत्पादक, सटोरिया पूँजी का उत्पादन में लगी पूँजी का वर्चस्व कायम हुआ? दुनियाभर के पूँजीपतियों और उनके पिछलग्गुओं के जन्नत-अमरीका की हकीकत क्या है? इस संकट से निकलने के लिए शासक वर्गों द्वारा क्या उपाय किये जा रहे हैं और इनके क्या परिणाम होंगे? इस संकट की कीमत कौन चुका रहा है और इसका स्थायी समाधान क्या है? इन सवालों का सही हल ढूँढना जरूरी है क्योंकि इनका सम्बन्ध मानवता के भविष्य से जुड़ा हुआ है।

संकट कैसे प्रकट हुआ?

सब-प्राइम बन्धक पत्रों का गड़बड़झाला

फकितना खूबसूरत उधार! आधुनिक समाज की बुनियाद...

दो साल पहले मेरी औकात दो सेन्ट के बराबर भी नहीं थी, और अब मैं बीस लाख डॉलर का देनदार हूँ।[द]

-मार्क ट्वेन के उपन्यास का एक पात्र

अब 9 साल पहले एनरॉन और वर्ल्डकॉम के घोटाले और डॉट कॉम बुलबुले के फटने के बाद अमरीकी वित्तीय बाजार भरभरा उठा था। उसी समय अमरीकी रिजर्व बैंक (फेडरल रिजव) के तत्कालीन अध्यक्ष, एलन ग्रीन स्पान ने ब्याज दर घटा कर बैंकों में भारी नगदी झोंक दी। इसने शेयर बाजार में दुबारा जान फूँकने का काम किया। ब्याज दर कम हाने के चलते मकान बन्धक पत्रों के कर्ज की मासिक किस्त कम हो गयी। लोगों ने और मँहगे मकान खरीद कर उस पर कर्ज लेना शुरू किया।

मकान की कीमतों में उछाल आते ही वह रिहाइश से ज्यादा निवेश का साधन बनता गया। खास कर जिन लोगों को डॉट कॉम बुलबुले के फटने से नुकशान हुआ था उन्होंने शेयर बाजार की तुलना से मकान में पैसा लगाना अधिक निरापद समझा। मकान के मालिक भी अपनी गृह-सम्पत्ति की कीमत चढ़ते ही उसी अनुपात में और ज्यादा नये कर्ज लेने लगे। बैंक बेरोकटोक कर्ज बाँटने लगे। बीमा कम्पनियाँ बन्धक पत्रों का बीमा करने लगीं।

उत्पादन में पैसा लगाये बिना ही जल्दी से जल्दी कमाई करने की होड़ में सटोयिा पूँजी ने एक नया तरीका निकाला। नये मकान खरीदने के लिए या पुराने मकानों पर वित्तीय संस्थाओं ने जो कर्ज दिये थे उनके बन्धक-पत्रों पर उन्होंने सट्टेबाजी शुरू की। इसके लिए सी. डी. एस. यानि क्रेडिट डिफॉल्ट स्वैप (उधार देनदारी की अदला-बदली) के नाम से सट्टेबाजी का एक नया उपकरण ईजाद किया गया। इसे वित्तीय संस्थाओं ने अपने द्वारा दिये गये कर्जों की जोखिम पर सट्टा लगाने के लिए बाजार में उतारा। इसे खरीदने वाले यह मानकर चलते थे कि मकान का दाम तो बढ़ना ही है। अगर कर्जदार ने मकान का किस्त नहीं भी चुकाया तो मकान की नीलामी करके कर्ज की रकम से कहीं ज्यादा पैसा हासिल किया जा सकता है। मकान की वास्तविक कीमत से कई-कई गुने अधिक रकम के सी. डी. एस. कई-कई पैकेज में कई-कई बार बेचे गये।

सट्टेबाजी का यह नया उपकरण कितनी तेजी से और कितने बड़े पैमाने पर फैला इसका प्रमाण यह है कि 1995 में जे. पी. मोर्गन ने पहला सी. डी. एस. जारी किया था जो 2007 के मध्य तक लगभग 45,000 अरब डॉलर कागजी मूल्य के बराबर यानि अमरीकी शेयर बाजार से दो गुना हो गया। इसने सट्टेबाजी के सभी उपकरणों-फ्रयूचर्स (वायदा कारोबार), ऑप्सन्स और अन्य स्वैप्स को पीछे छोड़ दिया। इसने सट्टेबाजी को नयी उफँचाई पर उछाल दिया। छोटी-बड़ी कम्पनियाँ, वित्तीय-गैरवित्तीय संस्थान, शेयर दलाल और हेज फण्ड कम्पनियाँ ही नहीं, बल्कि आम अमरीकी नागरिक भी सस्ते ब्याज दर पर कर्ज ले-लेकर शेयर बाजार की ओर दौड़ पड़े। पूरा अमरीकी समाज एक विराट जुआघर में तब्दील हो गया। वित्तीय कम्पनियों का शु(मुनाफा 1982 में 5 फीसदी से भी कम था, जो 2007 में बढ़ कर 42 फीसदी हो गया।

फिर उल्टा चक्र शुरु हुआ। 2006 में मुद्रास्फीति पर लगाम लगाने के लिए अमरीकी रिजर्व बैंक ने ब्याज दर बढ़ा दिया। इसके चलते मकान मालिक कर्ज की किस्त चुकाने में असमर्थ हो गये। मकान की नीलामी से भी कर्ज पाटना सम्भव नहीं था। बीमा कम्पनियों के लिए एक साथा इतनी बड़ी रकम की एकमुश्त भरपाई करना सम्भव नही था। बैंक दिवालिया होने लगे। बीमा कम्परिनयाँ डूबने लगीं। जिन लोगों ने बन्धक पत्रों के उफपर सट्टा लगाया था वे तबाह हो गये। शेयर बाजार लुढ़कने लगा। हर जगह त्राहि-त्राहि मच गयी। जाहिर तौर पर 2007 में इस संकट से निपटने के लिए रिजर्व बैंक ने डॉलर छाप-छाप कर पूरी दुनिया में डॉलर की बाढ़

लादी। लेकिन इसके बावजूद संकट हल नहीं हुआ क्योंकि पुराने कर्ज की वापसी न होने के चलते बैंकों ने नये कर्ज देने या कर्जों के नवीनीकरण से मना कर दिया। इसके बजाय जो भी नगदी बैंक में भरती गयी उसकी जमाखोरी करने लगे। इसके चलते 'उधार का संकट पैदा हुआ जिसने अमरीकी अर्थव्यवस्था सहित पूरी दुनिया को अपनी चपेट में ले लिया।

सब प्राइम बन्धक के संकट का कारण यह नहीं है कि गरीब लोगों ने अपनी औकात से अधिक कर्ज लेना मकान खरीदा और कर्ज वापस नहीं किया। यह तो पूँजीवाद में होता ही रहता है। अगर किसी ने कर्ज नहीं चुकाया तो उसने बंधक में रखा अपना मकान भी तो गँवाया!

दरअसल इस संकट के लिए ठहरावग्रस्त, मरणसन्न पूँजीवादी व्यवस्था जिम्मेदार है जो अपने अपराधों को मजदूरों के सिर मढ़ रही है। कैसे?

अमरीका की कुल राष्ट्रीय आय की तुलना में मजदूरों की मजदूरी और वेतन में लगातार गिरावट आयी, क्योंकि 70 के दशक के आर्थिक ठहराव के बाद पूँजीपति वर्ग ने मजदूरों पर सिकंजा कसना तेज कर दिया। अधिक उत्पादन करके अधिक मुनाफा कमाने की जगह मजदूरी में लगातार कटौती करके मुनाफा बढ़ाया गया। इसके कारण आमदनी में असमानता तेजी से बढ़ी।

निम्न आय वाले 90 फीसदी और उफपरी तबके के 0.01 फीसदी लोगों के बीच 1950 से 1970 तक 162 गुने का अन्तर था। जो 1990 से 2002 के बीच 18,000 गुना हो गया। 2001 में वहाँ के एक फीसदी लोगों की सम्पत्ति निम्न आय वाले 80 फीसदी लोगों की कुल सम्पत्ति के 2 गुने से भी अधिक थी।

आय में इतनी असमानता के बावजूद वहाँ घरेलू उपभोग लगातार बढ़ता रहा। 1960 में वहाँ के परिवारों का उपभोग सकल घरेलू उत्पाद का 60 फीसदी था जो 2007 में बढ़कर 70 फीसदी हो गया। यह उपभोग आम लोगों की आय में बढ़त के चलते नहीं बढ़ा। इसके लिए परिवार के सभी सदस्यों को काम करके खर्चा जुटाना पड़ा। महिलाओं का भारी संख्या में काम में लगना, ज्यादा घंटे काम करके अपनी आय बढ़ाना, एक साथ कई काम करना और उपभोक्ता कर्ज में बेतहाशा वृ(। इसमें मकान की कीमत बढ़ने पर उसे गिरवी रखकर ज्यादा से ज्यादा कर्ज लेना भी शामिल था। 1960 में परिवारों का कर्ज जी. डी. पी. का 60 फीसदी था जो 2007 में बढ़कर 100 फीसदी हो गया। 1990 के बाद परिवारों का कर्ज तेजी से बढ़ा।

लोगों की आमदनी और खरीद क्षमता बढ़ाने के बजाय उन्हें कर्ज के जाल में फँसा कर उपभोग बढ़ाया गया। चूँकि आमदनी में कोई वृ(नहीं हो रही थी इसलिए लोग कर्ज चुकाने में असमर्थ हो गये।

असली कारण यह है कि आय के वितरण में गैरबराबरी के चलते मकानों की कीमत तो गिरती गई लेकिन उसी समय सट्टेबाजों ने फर्जी पूँजी का बाजार गर्म रखा। वे ऐसे कागजों की खरीद-बिक्री पर भारी मात्रा में वित्तीय पूँजी लगाते गये जिसका वास्तव में कोई ठोस आधार नहीं था। चूँकि इस खेल में परजीवी सट्टेबाजों और वित्तीय संस्थाओं को भारी नुकसान हुआ, इसीलिए मीडिया कर्मियों, अर्थशास्त्रियों और राजनेताओं ने 'संकट' को स्वीकार किया और उन्हें बचाने के लिए सरकारी खजाना खोल दिया गया। मजदूरों की सामाजिक सुरक्षा और उनकी रोजी-रोटी की परवाह न पहले किसी को थी और न ही इस संकट की घड़ी में है, जबकि संकट की सबसे बड़ी मार मेहनतकशों पर पड़ रही है।

'सब प्राइम बन्धक' संकट पानी में तैरते बर्फ की विराट चट्टान का सतह से उफपर चमकता हुआ छोटा भाग है। वर्तमान पूँजीवादी विश्व व्यवस्था का संकट के कहीं गहरे कारण हैं और इसे वास्तविक अर्थव्यवस्था में मन्थर विकास और ठहराव के सन्दर्भ में ही समझा जा सकता है। इसकी असलियत को समझने के लिए आधुनिक इतिहास में पूँजी के बदलते चरित्र पर एक सरसरी नजर डालन जरूरी है। तभी हम इस रहस्य को समझ सकते है कि एक जमाने में उत्पादन के नये-नये कीर्तिमान स्थापित करने वाला पूँजीवादी समाज आज पतनशीलता के उस गर्त तक कैसे पहुँचा जहाँ विश्व पूँजीवाद की चौधराहट सम्भालने वाले अमरीका में उत्पादन के क्षेत्र में केवल पाँच फीसदी पूँजी लगी है और 95 फीसदी पूँजी सट्टेबाजी में।

पूँजी का बदलता चरित्रः आधुनिक इतिहास पर एक सरसरी नजर

पूँजी जब इंसानी जरूरतों को पूरा करने वाले उत्पादन की कार्यवाई से अपना नाता तोड़ लेती है, तो पक्के तौर पर वह सट्टेबाज पूँजी में बदल जाती है जिसका एक ही मकसद रह जाता है-किसी भी कीमत पर खुद को बढ़ाते जाना।

सट्टेबाजी का प्रचलन उतना ही पुराना है जितना पूँजीवाद का इतिहास। लेकिन उस जमाने में इसे घटिया काम माना जाता था और तब कोई सोच भी नहीं सकता था कि यह किसी देश की पूरी अर्थव्यवस्था पर, यहाँ तक कि पूरी दुनिया पर हावी हो जायेगी। आज यही हो रहा है। दुनियाभर में दिन-ब-दिन बढ़ती बेरोजगारी, उद्योग धन्धों और खेती की तबाही, तीसरी दुनिया के देशों की कंगाली-बदहाली और पर्यावरण का विनाश-सटोरिया पूँजी के काले कारनामो का ही नतीजा है।

लेकिन यह सब रातों-रात नहीं हुआ।

पूँजीवादी व्यवस्था की चालक शक्ति हमेशा ही पूँजी संचय रही है। लेकिन यह तब मानी हुई बात थी कि जहाँ पूँजी संचय होगा, वहाँ सम्पत्ति, आमदनी और खुशहाली बढ़ाने में मदद भी मिलेगी। इस काम की अपनी बुराईयाँ भी थी। मजदूरों का शोषण, बेरोजगारी में वृ(, समय-समय पर आने वाली मन्दी, संकट और तबाही पहले भी थी लेकिन कुल मिलाकर ऐसे पूँजीवाद के फायदे भी थे। आगे चलकर 20 वीं सदी की शुरूआत और खास तौर पर दूसरे विश्वयु(के बाद पूँजी संचय के तौर तरीके में जो बदलाव आया, उसके चलते इसकी रही-सही अच्छाइयाँ भी खत्म होती गयी। और आज यह पूरी तरह विनाशकारी ताकत में बदल गयी है।

औद्योगिक क्रान्ति के बाद 18 वीं सदी से पूँजीवाद की शुरूआत हुई। उसी दौरान छोटे-छोटे उद्यमी प्रतियोगी बाजारों में कारोबार करते थे। कपड़ा उद्योग से शुरू

हुआ तकनीकी विकास अर्थव्यवस्था के सभी क्षेत्रों में पूँजी निवेश, पूँजी संचय और आर्थिक प्रगति को तेज करने लगा।

औद्योगिक पूँजीवाद के शुरूआती दौर में बाजार मूलतः स्थानीय था और उसका आकार भी सीमित था। यातायात और संचार के साधनों (जलमार्ग, रेलवे और टेलीग्राफ) के विकास के बाद बाजार का आकार और फैलाव काफी बढ़ गया। पूँजीपतियों के बीच प्रतियोगिता भी काफी तीखी हो गयी। 19 वीं सदी के पूर्वा(तक आते-आते पूँजी संचय और आर्थिक विकास काफी उफँचाई पर पहुँच गया।

उत्पादन और उपभोग बढ़ाने के लिहाज से उस दौरान पूँजीवाद की कार्रवाई सही चल रही थी लेकिन पूँजीपतियों के लिए हालात अच्छे नहीं थे। हुआ यह कि प्रतियोगिता में एक दूसरे को पीछे छोड़ देने की होड़ में पूँजीपतियों ने अपनी क्षमता और उत्पादन का इतना ज्यादा विस्तार कर लिया जो अधिकतम मुनाफे की सीमा से बाहर हो गया। कमजोर उद्यम इस होड़ में तबाह ही हो गये, जो ताकतवर थे वे भी अपने को टिकाए रखने की अन्तिम लड़ाई लड़ने लगे। कीमतों में भारी गिरावट, फैक्टरियों में तालाबन्दी और मजदूरों की बेरोजगारी, रोजमर्रे की बात हो गयी।

इस संकट ने एक नई परिघटना को जन्म दिया। 19 वीं सदी के अन्तिम दो दशकों में पूँजी के संकेन्द्रण (चन्द हाथों में बेशुमार पूँजी जमा होना) और केन्द्रीकरण (बेशुमार पूँजी के मालिकों की आपस में साँठ-गाँठ) की प्रक्रिया काफी तेज हो गयी। संकट के समय बड़ी कम्पनियों ने तबाह होने वाली छोटी कम्पनियों को निगल लिया और उद्योग की विभिन्न शाखाओं में ढेर सारे छोटे-छोटे पूँजीपतियों की जगह गिने-चुने एकाधिकारी पूँजीपति बच गये। इन पूँजीपतियों ने आपस में मिलकर कई तरह की मेल-जोल वाली संस्थाएँ जैसे-ट्रस्ट, कारटेल, मालिकाना कम्पनी और कार्पोरेशन बना लिया। इन संस्थाओं के जरिये उन्होंने गलाकाटू प्रतियोगिता में टिके रहने के लिए कच्चे माल के स्रोतों और माल की कीमतों पर नियन्त्रण कर लिया। इसी के साथ-साथ औद्योगिक देशों-यूरोप, अमरीका और जापान ने अपने लिए बाजार और सस्ते माल की आपूर्ति के लिए एशिया, अफ्रीका और लातिन अमरीका के देशों को उपनिवेश बनाने या उन पर नियन्त्रण कायम करने का प्रयास तेज कर दिया। इस तरह प्रधानतः घरेलू बाजार वाला छोटे पैमाने का प्रतियोगी पूँजीवाद 20 वीं सदी की शुरूआत तक एकाधिकारी नियन्त्रणवाली साम्राज्यवादी व्यवस्था में बदल गया।

पूँजीवाद के इस ऐतिहासिक कायापलट के पीछे वित्तीय पूँजी के जन्म ने

महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। 19 वीं सदी के उत्तरा(तक बैंको के तीन मुख्य काम थे-(1) पूँजीपतियों के बही खाते और जमा पूँजी की देख-रेख करना (2) छोटी अवधि के कर्ज देकर उत्पादन और व्यापार के चक्र को घूमते रहने में मदद करना और (3) सरकार की लम्बी अवधि की जरूरतें पूरी करना जिसमें सेना और यु(का खर्च तथा सड़कें, नहर इत्यादि का निमार्ण शामिल था। संकट के दौर में उद्योग की शाखाओं की तरह ही बैंकिग के क्षेत्र में भी छोटी-छोटी मछलियों की तबाही की कीमत पर बड़ी मछलियां और बड़ी होती गयीं। इस तरह ढेर सारे बैंकों को निगल कर मुट्ठीभर एकाधिकारी बैंक मैदान में बचे रहे। इन बैंकों के पास जैसे-जैसे इफरात मुद्रा पूँजी जमा होती गयी, उनकी रूचि उद्योग में बढ़ती गयी। कर्ज देने या ना देने के अधिकार के दम पर वे उद्योगों को प्रभावित और नियन्त्रित करने लगे और अर्थव्यवस्था में निर्णायक भूमिका निभाने लगे। बैंक पूँजी और औद्योगिक पूँजी के मेल से एक नये तरह की पूँजी-वित्तीय पूँजी का जन्म हुआ जिस पर वित्तपतियों का नियन्त्रण था और जिसका काम उद्योग में पूँजी लगाना था ताकि मानव श्रम का शोषण करके अधिकाधिक मुनाफा पैदा किया जाय।

इस तरह 20 वीं सदी के पूर्वा(तक साम्राज्यवाद के युग में प्रवेश करने के बाद भी पूँजी संचय की प्रक्रिया औद्योगिक पूँजी (उद्योग में पूँजी निवेश-मजदूरों का शोषण-उत्पादन में वृ(ि-मुनाफा-पूँजी संचय) पर ही केन्द्रित रही, जैसा कि औद्योगिक क्रान्ति के बाद से ही जारी थी। इतना फर्क जरूर पड़ा कि वित्तीय पूँजी के मालिक औद्योगिक पूँजी के उफपर हावी हो गये और उन्हें वित्तपोषित (कूपन काटकर) अतिलाभ कमाने लगे। इन दोनों समूहों-औद्योगिक पूँजी और वित्तीय पूँजी के मालिकों का एक ही साझा लक्ष्य था-पूँजी को उत्पादन में लगाकर स्टील, पेट्रोलियम, रसायन और उपभोक्ता माल इत्यादि तैयार करना और भरपूर मुनाफा कमाना, भले ही उनके बीच मुनाफे के बँटवारे को लेकर जितना भी झगड़ा हो। उस दौर में भी इक्के-दुक्के वाणिज्य बैंक, शेयर दलाल और बॉन्ड डीलर सट्टेवाजी करने को लालायित रहते थे। लेकिन जैसे ही जैसे पूँजीवाद के पूरे इतिहास में ही थोड़ी बहुत सट्टेबाजी होती थी, जिससे कुछ लोग बर्बाद होते थे, तो कुछ लोग मालामाल। समग्रता में वित्तीय पूँजी उत्पादन के मातहत थी।

20 वीं सदी की शुरूआत साम्राज्यवादी देशों में लम्बी अवधि के आर्थिक ठहराव से हुई जिसका समाधान प्रथम विश्व यु(के रूप में हुआ। यु(की समाप्ति

के बाद अमरीका में कुछ समय तक आर्थिक तेजी बनी रही। इसमें नवजात ऑटोमोबाइल (मोटर गाड़ियां) उद्योग की महत्वपूर्ण भूमिका थी जिसने स्टील, रबर, पेट्रोलियम और अन्य कई तरह के उद्योगों को गति प्रदान की और नयी-नयी आर्थिक गतिविधियों को जन्म दिया। लेकिन इस तेजी के दौरान भी पूँजीवाद के अन्तरनिहित अन्तरविरोध सतह के नीचे अपना काम करते रहे। अन्ततः 1929 में वित्तीय विध्वंश के रूप में संकट का.िन्न बोतल से बाहर निकल आया जिसने पूँजीवाद के इतिहास की सबसे बड़ी तबाही मचायी। (वर्तमान अमरीकी वित्तीय संकट की तुलना इसी संकट से की जा रही है।) 1930 के दशक की महामन्दी इसी का नतीजा थी। यह पूँजीवाद के इतिहास की एक अभूतपूर्व घटना थी क्योंकि पूरे 10 वर्षों तक वहाँ कोई आर्थिक विकास नहीं हुआ। 1933 में अमरीका की कुल श्रम शक्ति में 25 फीसदी बेरोजगारी थी। अर्थशास्त्रियों का अनुमान था कि पहले की ही तरह तेजी आयेगी और बेरोजगारी खत्म हो जायेगी। लेकिन इस बार ऐसा नहीं हुआ। 1937 में भी बेरोजगारी 14 फीसदी बनी रही जो 1938 में बढ़कर 19 फीसदी हो गयी। इस आर्थिक महामारी की चपेट में आकर अमरीका की पूरी सामाजिक व्यवस्था चरमराने लगी। जनता को भुखमरी से बचाने के लिए रूजवेल्ट प्रशासन को न्यू डील के तहत आपातकालीन राहत कार्य चलाना पड़ा। इस संकट ने पूँजीवाद के भविष्य पर प्रश्न चिह्न खड़ा कर दिया। यही दौर था जब समाजवादी व्यवस्था के अधीन सोवियत रूस में कामयाबी के नये-नये कीर्तिमान स्थापित हो रहे थे और बेरोजगारी का कोई नामोंनिशान नहीं था।

अमरीका सहित पूरी दुनिया को इस विनाश के दलदल से बाहर निकालने में दूसरे विश्वयु(ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। किसी ने ठीक ही कहा है कि महामन्दी खत्म नहीं हुई थी, बल्कि यु(अर्थव्यवस्था में तिरोहित हो गयी थी। यु(के दौरान 1939 से 1944 के बीच अमरीका में विकास दर 15 फीसदी रही। लेकिन इसकी प्रेरक शक्ति पूँजीवाद की आन्तरिक गति नहीं, बल्कि विनाशकारी यु(में था। पूँजीवाद का यह तर्क तो महामन्दी ने ही स्थापित कर दिया था कि परिपक्व पूँजीवादी व्यवस्था की सामान्य अवस्था आर्थिक ठहराव है। यदि किसी दौर में ठहराव नहीं है तो तय है कि इसके पीछे कोई बाहरी कारक की ही भूमिका होगी।

1945 से 1970 तक, अमरीकी तेजी के पीछे भी ऐसे ही कारक थे जिनमें यु(की तबाही के पुनर्निमाण के लिए अमरीका ने मार्सल योजना के तहत यूरोप और दुनिया के अन्य हिस्सों में भारी निवेश किया। यु(के दौरान उपभोक्ता वस्तुओं

की जगह सैनिक आपूर्ति के लिए उत्पादन हो रहा था जिसे हटाते ही उपभोक्ता माल के उत्पादन और माँग में तेजी आयी। यु(के दौरान इलेक्ट्रोनिक तकनीक और जेट विमान जैसी नयी खोजों में निवेश की भारी गुंजाइश थी। इसके अलावा उसी दौरान अमरीका ने शीतयु(पर काफी धन खर्च किया।

लेकिन तेजी ज्यादा दिन तक नहीं बनी रही। पूँजी संचय की यह प्रकृति है कि जिस माँग के चलते पूँजी संचय को प्रोत्साहन मिलता है, वितरण में भारी असमानता के चलते वह टिकाउफ नहीं रहता। जब तक कोई नया उत्प्रेरक पैदा न हो, तब तक पूँजी संचय रूक जाता है और ठहराव फिर से आ धमकता है। 1970-75 में ऐसी ही तीखी मन्दी का आगमन हुआ।

लोगों के जिन्दा रहने और पुनरूत्पादन के लिए जरूरी उपभोक्ता माल और सेवाओं का अत्पादन करने वाली वास्तविक अर्थव्यवस्था आज गिने-चुने लोगों के कब्जे में है। यह उत्पादन प्रणाली उनके लिए भारी मुनाफा पैदा करती है जिसका अधिकांश भाग वे निवेश करना चाहते हैं। लेकिन बहुसंख्य आबादी की आय इतनी सीमित होता है कि वे मुनाफे के मौजूदा स्तर को बनाये रखने भर माल को बमुश्किल ही खरीद पाते हैं। इसलिए व्यापक जनता के लिए उपयोगी वस्तुओं का उत्पादन बढ़ाकर उससे मुनाफा कमाना मुमकिन नहीं होता। ऐसा करना अतिरिक्त क्षमता में निवेश करना होगा जो पूँजीवाद के तर्क के खिलाफ है। ऐसे में वे अपने भारी मुनाफे का क्या करें?

इसके लिए वे वास्तविक उत्पादन में निवेश करने की जगह वित्तीय क्षेत्र में निवेश करते हैं। जब 1970 में अमरीकी अर्थव्यवस्था ठहरावग्रस्त हुई तो पूँजीपति भारी पैमाने पर यही करने लगे।

पहले भी वित्तीय पूँजी का विस्तार होता था लेकिन वह उत्पादक व्यवस्था में होने वाली समृ(के साथ-साथ विस्तारित होती थी। वर्तमान दौर में इसका उल्टा हो रहा है। आज वित्तीय पूँजी स्वस्थ उत्पादक व्यवस्था का पोषक करके अपना विस्तार करने के बजाय ठहरावग्रस्त अर्थव्यवस्था के उफपर फल-फूल रही है।

वित्तीय पूँजी और उत्पादक पूँजी के बीच के उल्टे रिश्ते को समझे बिना वर्तमान दुनिया की नयी-नयी परिघटनाओं और प्रवृत्तियों को समझना मुमकिन नहीं।

सटोरिया पूँजी का चरित्र

यदि सट्टेबाजी उद्योग की स्थायी धारा के उफपर उठने वाले बुलबुले के समान हो तो उससे कोई खास नुकसान नहीं होता। लेकिन हालात तब गम्भीर हो जाते हैं जब उद्योग खुद ही सट्टेबाजी के भँवर के उफपर तैरने वाला बुलबुला बन जाता है। जब किसी देश का विकास जुआघर का उपउत्पाद बन जाता है, तब पूरी सम्भावना होती है कि बात बिगड़ जाय।ट

-जॉन मेनार्ड कीन्स

(1936 में अमरीकी अर्थव्यवस्था पर टिप्पणी करते हुए।)

वित्तीय पूँजी के रूप में मुद्रा पूँजी लगातार इस तलाश में रहती है कि जल्दी से जल्दी और कारगर तरीके से अपने मूल्य के उफपर लाभ कमा सके। पूँजी की उपयोगिता यही है कि वह अपने मालिक के फायदों के लिए अपना मूल्य बारम्बार पुनर्उत्पन्न करे। अगर बैंक खाते में पड़ी रहे तो ब्याज कमाने के अलावा यह वास्तव में मृत पूँजी होती है एक ऐसी पूँजी जिसका इस्तेमाल नहीं हो रहा हो या जो ब्याज के रूप में बहुत ही छोटा लाभ कमाने तक सीमित हो।

ज्यादा से ज्यादा मुनाफा बटोरने की हवस में ही वित्तीय पूँजीपतियों का चरित्र सटोरिया और परजीवी होता गया है। मुनाफा कमाने का एक तरीका यह है कि उत्पादन की प्रक्रिया में पूँजी निवेश किया जाय और मजदूरों की श्रमशक्ति से पैदा होने वाले अतिरिक्त मूल्य के रूप में लाभ वसूल किया जाय। लेकिन इस काम में मुनाफे की दर सीमित होती है क्योंकि पूँजी का एक भाग स्थिर पूँजी (प्लाण्ट, मशीनरी और कच्चा माल) तथा अचल पूँजी (प्लाण्ट और मशीनरी) में फँस जाती है। दूसरे, निवेश पर फटाफट लाभ मिलना तुरन्त चालू नहीं हो जाता। इस पूरी प्रक्रिया में एक निश्चित समय लगता है क्योंकि माल बिकने बाद भी मुनाफे की

वसूली होती है।

एक बेहतर विकल्प यह है कि वह अपनी पूँजी पर जल्दी से जल्दी और ज्यादा से ज्यादा मुनाफा कमाने के लिए उसे जुएँ में दाब पर लगा दे। शेयर बाजार, पूँजीवाद के अन्तर्गत सट्टेवाजी की शुरूआती मन्जिल परजीवी जुआबाजी का एक ऐसा ही रूप है। शेयर खरीदने वाला उपयोगी उत्पादक काम नहीं करता, लेकिन लाभांश भुगतान के जरिये या जब शेयर का दाम चढ़ जाये तो उसे महँगे दाम पर बेच कर लाभ की उम्मीद करता है। सुनिश्चित लाभ वाले तरह-तरह के बॉण्ड और प्रतिभूतियों की खरीद में सट्टेबाजी भले ही कम होती है लेकिन परजीविता कम नहीं होती।

सूचना तकनोलोजी कम्प्यूटर और इन्टरनेट ने शेयर बाजार के असली कारोबार को बदल कर एक अकल चकरा देने वाला ताम-झाम खड़ा किया है। वित्तीय बाजारों में फ्रयूचर व्यापार, मुद्रा व्यापार, स्वैप और अप्रतिभूत_ण पत्रों की बेलगाम खरीद बिक्री हो रही है जिसके जरिए सेकेंडों में मुनाफा कमाया जा सकता है।

उत्पादन के क्षेत्र में ठहराव आने और मुनाफे की दर कम होने के चलते उत्पादक पूँजी बड़ी तेजी से सटोरिया पूँजी की ओर मुड़ती चली गयी। यह उत्पादक पूँजी के लिए कम जोखिम और भारी मुनाफे वाले निवेश का एक साधन था। पिछले 40 वर्षों में इसने पूँजी और पूँजीवादी व्यवस्था पर अपना वर्चश्व स्थापित कर लिया।

वित्तीय पूँजी का उद्भव बैंक पूँजी और औद्योगिक पूँजी के विलय और उस पर बैकों का वर्चस्व कायम होने के चलते हुआ था। वित्तीय पूँजी व्यवसाय के मालिकों और निगमों को उत्पादन की कार्यवाइ में निवेश के लिए व्याज पर उधार देती है। इस तरह पूँजीवादी उत्पादन चक्र का एक जरूरी हिस्सा होती है, जबकि सटोरिया पूँजी पैसा बनाने के मकसद से वित्तीय उपकरणों जैसे-विदेशी मुद्रा, शेयर, बॉण्ड और नाना प्रकार के डेरिवेटिव्स (व्युत्पत्ति) की खरीद-बिक्री की कार्यवाइ है। इसमें लगी हुई राशि बिना उत्पादन में लगाये तेजी से बढ़ रही है। हर रोज 25 हजार अरब डॉलर की मुद्रा दुनियाभर के वित्तीय बाजारों में आती-जाती है।

वित्तीय पूँजी के विपरीत, सटोरिया पूँजी उत्पादक पूँजी के सर्किट से अलग कर दी जाती है और अतिरिक्त मूल्य पैदा नहीं करती बल्कि केवल अतिरिक्त मूल्य

को फ्पुनर्वितरित्र करती है। सटोरिया पूँजी का स्तेमाल अधिक संख्या में मजदूरों को काम पर रखने के लिए, प्लान्ट और औजार खरीदने के लिए, कच्चा माल खरीदने के लिए या नयी तकनोलोजी के उफपर पुनर्निवेश में नहीं किया जाता इसके बजाय इस आभासी पूँजी की भारी मात्रा को सट्टेबाजी की ओर मोड़ दिया जाता है जहाँ जुआरी वित्तीय उपकरणों के मूल्य में उतार-चढ़ाव के उफपर दाव लगाते हैं।

पूँजी का सामान्य सूत्र है, मुद्रा-माल-मुद्रा. (मूल मुद्रा. अतिरिक्त मूल्य) लेकिन अब यह सूत्र बदलकर मुद्रा-मुद्रा (मूल मुद्रा. मुनाफा) हो गया।

सटोरिया पूँजी मुनाफे की सामान्य दर के निर्माण की प्रक्रिया, समग्र पूँजीवादी व्यवस्था की पराकाष्ठा है जहाँ सारे के सारे पूँजीपति जो भी उपयोग मूल्य पैदा न करते हों ,मजदूरों के शोषण में साझीदार होते हैं। उत्पादन में नही लगने के बावजूद सटोरिया पूँजी का उत्परदक पूँजी से कटकर कोई अस्तित्व नहीं रह सकता। दरअसल यह उत्पादक पूँजी की निगरानी और नियन्त्रण करते हुए उसके कन्धे पर सवारी गांठती है।

सटोरिया पूँजी की गति यह है कि अपनी माँग की पूर्ति के लिए इसे अधिक से अधिक पैसे की जरूरत होती है। अमरीकी रिजर्व बैंक ने अमरीकी बैंक व्यवस्था में भारी मात्रा में नकदी झोंक कर शेयर बाजार का पेट भरने और गृह बन्धक पत्रों के बुलबुले को फुलाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई, ताकि सटोरिया पूँजी का विस्तार होता रहे। भारतीय रिजर्व बैंक भी इसी राह पर आगे बढ़ रहा है। एक अनुमान के मुताविक दुनियाभर के डेरिवेटिव्स बाजार का कागजी मूल्य लगभग 2,20,000 अरब डॉलर तक पहुँच गया है यह राशि भारत के वर्तमान सकल घरेलू उत्पाद का लगभग 220 गुना है यानि इतना पैसा पैदा करने में भारत की एक अरब आबादी को 220 साल जी तोड़ मेहनत करनी पड़ेगी।

साम्राज्यवादी वैश्वीकरणः संकट को भारत पर थोपना और उसके नतीजे

हमने देखा कि मुनाफे की दर गिरते जाने और उत्पादक पूँजी के जरिये तेजी से पूँजी संचय कर पाने में अक्षमता ने सटोरिया पूँजी को बढ़ावा दिया। इसने निवेशकों के लिए भारी मुनाफा पैदा किया जिसके चलते पूँजी संचय और निवेश का संकट और भी विकट हो गया। संकट और अस्थिरता के इस युग में अपनी आयु बढ़ाने के लिए पूँजीवाद एक के बाद एक ऐसे तौर तरीके इजाद करता रहता है जो स्थिरता का भ्रम पैदा करते हैं। इन वैश्वीकरण भी साम्राज्यवाद की एसी ही नयी रणनीति है।

'80 के दशक के उत्तरा(में विश्व राजनीतिक पटल पर होने वाली महत्वपूर्ण घटनाओं के परिणामस्वरूप दुनिया के वर्ग शक्ति संतुलन में भारी बदलाव आये पूरी दुनिया में श्रम को पीछे हटना पड़ा और पूँजी का वर्चश्व कायम हुआ। इसके चलते पूँजी के अतिसंचय का संकट झेल रहे साम्राज्यवादी देशों के लिए पूँजी निवेश का एक बड़ा भूभाग हासिल हो गया।

वैश्वीकरण आधुनिक विश्व की एक स्वभाविक गति है। पूँजी और पूँजीवाद के विस्तार के इतिहास को दुनिया जानती है। आधुनिक विश्व में उत्पादक शक्तियों के विकास के शुरूआती दौर से ही वैश्विकरण की स्वाभाविक प्रक्रिया लगातार जारी रही है। हालाँकि उपनिवेशवाद और साम्राज्यवाद की पैदाइश क साथ यह स्वाभाविक प्रक्रिया बाधित हुई, लेकिन फिर भी, लँगड़ाते हुए ही सही, यह निरन्तर चलती रही।

समाजवाद के आविर्भाव के साथ एक समानान्तर विश्व-व्यवस्था उठ खड़ी हुई और ज्यों-ज्यों समाजवाद का विस्तार होता गया, साम्राज्यवादी पूँजी के विस्तार का क्षेत्र संकुचित होता गया। समाजवाद की स्भाविक सहयोगी राष्ट्रीय मुक्ति की धारा ने भी इस विस्तार पर रोक लगाने में मदद पहुँचायी। एक तरफ विश्व पूँजीवाद और साम्राज्यवाद और दूसरी ओर समाजवाद क बीच एक लम्बे संघर्ष में, जिसका फलक

बहुत ही विस्तृत रहा है, समाजवाद सामयिक तौर पर पराजित हुआ और राष्ट्रीय मुक्ति संघर्षों की धारा भी अपनी एतिहासिक परिणति तक पहुँच गयी। इसी के साथ साम्राज्यवादी वैश्वीकरण का रास्ता साफ हो गया।

इतिहास के इस मोड़ पर अमेरिका के नेतृत्व में साम्राज्यवादी समूह ने अपनी नयी विश्व रणनीति तैयार की और तीसरी दुनिया पर एक नयी गुलामी थोप देने का षड्यन्त्र शुरू किया । साम्राज्यवादी खेमे के भीतर अलग-अलग देशों की शक्ति के मुताबिक उनकी महत्वकाक्षाऐं और मन्सूबे भले ही अलग-अलग हों, लेकिन तीसरी दुनिया पर आर्थिक नव औपनिवेशिक गुलामी थोप देने और अपने साम्राज्यवादी हितों के संरक्षण के मामले में उनकी आपस में मिली भगत है। जर्मनी नंस, ब्रिटेन, कनाडा, इटली और जापान इसमें अपना हिस्सा चाहते हैं। लेकिन बेल्जियम, डेनमार्क और फिनलैण्ड तथा आइसलैण्ड जैसे साम्राज्यवादी देश भी पूँजीवाद-साम्राज्यवाद को मजबूत बनाने तथा तीसरी दुनिया पर नयी गुलामी को कायम करने के सवाल पर एकमत हैं। रूस की भी यही इच्छा है। चीन भी इसी कतार में खड़ा है। आने वाले समय में ये देश भी साम्राज्यवादी समूह का हिस्सा बन सकते हैं। लेकिन यह बात याद रखनी होगी कि साम्राज्यवादी देशों के बीच, लुटेरों के बीच आपसी अन्तरविरोध ही स्थयी होता है, समझौता नहीं।

साम्राज्यवादी समूह अपने संकीर्ण वर्ग-स्वार्थों और अपनी प्राथमिकताओं के अनुरूप तीसर दुनिया के देशों की पहले से ही मौजूद समाज व्यवस्था पर एक नयी समाज व्यवस्था आरोपि कर रहा है। तीसरी दुनिया की यह नयी समाजव्यवस्थ-नयी उत्पादन प्रणाली और नयी गुलामी, इन देशों के इजारेदार सरमायादार गुटों के स्वार्थों और उनके आर्थिक हितों के अनुकूल है और उन्हें स्वीकार्य है। एक नयी विश्व रणनीति लागू करने का प्रयास किया जा रहा है जिसे साम्राज्यवादियों और उनके बु(जीवी प्रवक्ताओं ने फ्वाशिंगटन आम सहमतिष् नाम दिया है। इसका मतलब है तीसरी दुनिया के देशों के उफपर एक आर्थिक नव उपनिवेशिक उत्पादन प्रणाली का थोपा जाना। इसका मतलब है नग्न और निर्लज्ज पूँजी का प्रलयकारी ताण्डव-सब कुछ मुनाफे के लिए, सब कुछ साम्राज्यवादी समूह और उसकी सनक के लिए। इसका मतलब है तीसरी दुनिया के आदमी को जानवर के बराबर ला खड़ा करना तथा साथ ही अपने देश के मजदूरों को भी बेरहमी से लूटना, उनका दमन उत्पीड़न करना।

तीसरी दुनिया के ज्यादतर देशों के शासक वर्ग साम्राज्यवादी समूह की अधीनता को स्वीकार करते जा रहे हैं। उनमें कुछ अपवाद भी हैं और उनका स्वर मुखर भी है। वेनेजुएला के ह्यूगो शावेज और उनके जैसे अन्य लोग ऐसे ही अपवादों की श्रेणी में आते हैं।

साम्राज्यवादी देशों की सरकारें केन्द्रीय बैंक तथा विश्व बैंक मुद्राकोष और विश्व व्यापार संगठन जैसी साम्राज्यवादी संस्थाएँ मिल जुल कर ऐसी परीस्थिति तैयार करती हैं जिससे सटोरिया पूँजी का विस्तार हो। दुनियाभर के पूँजीपतियों के बीच से एक वैश्विक शासक वर्ग उभरा है। अमरीकी सैनिक और राजनीतिक प्रभुत्व के अधीन दुनिया भर कीराष्ट्रीय -अन्तर्राष्ट्रीय संसथाएँ और सरकारें इस वैश्विक शासक वर्ग के स्वार्थों की सेवा और सुरक्षा करती हैं। डॉलर के दबदबे के कारण वैश्विकि वित्तीय व्यवस्था पर भी अमरीका का वर्चस्व कायम है। विश्व पूँजीवाद इस अमरीकी वर्चश्व को अपने हित में समझता है क्योंकि उसका मुकाबला करने वाली कोई अन्य आर्थिक-राजनीतिक और सामाजिक ताकत नहीं है। यही उनके वर्तमान संश्रय का आधार है। इसने विश्व पूँजीवाद को सामाजिक तौर पर मजबूती प्रदान की है जिसके दम पर वे अपने संकट को लगातार तीसरी दुनिया और खुद अपने देश की मेहतनश जनता पर थोपते जा रहे हैं।इस काम में भारतीय शासक वर्ग भी किसी से पीछे नहीं हैं। उन्होंने राटइस काम में भारतीय शासक वर्ग भी किसी से पीछे नहीं हैं। उन्होंने तीसरी दुनिया के शत्रु सहयोगी शासक वर्गों की अपनी आर्थिक और वित्तीय नीतियों को बदल कर इस काम में मदद करते हैं। इस काम में भारतीय शासक वर्ग भी किसी से पीछे नहीं हैं। उन्होंने 'भारत अमरीकी रणनीति साझेदारी' समझौता और 'नाभकीय समझौता' के साथ-साथ भारतीय शासकों ने भी अर्थव्यवस्था के सभी प्रमुख क्षेत्रों में अमरीकी पूँजीपतियों के साथ असमान समझौते किये हैं।

इसी साम्राज्यवादी रणनीति के तहत आज भारत में भी यहाँ विकलांग पूँजीवाद के उफपर एक नयी व्यवस्था-आर्थिक नवउपनिवेशवादी व्यवस्था आरोपित की जा रही है। इसका उद्देश्य साम्राज्यवादी समूह और इनके सहयोगी भारतीय सरमायदारों की आवश्यकताओं और प्राथमिकताओं को पूरा करना है। भारतीय जनता की आवश्यकताओं की पूर्ति या भारत के विकास से इसका कोई लेना-देना नहीं है। यह भारतीय समाज के विकास की आन्तरिक गति को बल नहीं प्रदान करता बल्कि उसकी रही-सही आन्तरिक गति को भी कुचल डालता है।

यह नयी व्यवस्था ईस्ट इण्डिया कम्पनी और ब्रिटिश उपनिवेशवादियों द्वारा लादी गयी व्यवस्था से भिन्न है। इन दोनों व्यवस्थाओं के बीच देश और काल का काफी अन्तर भी है। यह नयी व्यवस्था र्स्वग्रासी और कहीं ज्यादा विनाशकारी है। भारत के सरमायेदार यहाँ की संसदीय राजनीतिक पार्टियाँ, समूचा सरकारी तन्त्र और बुि(जीवियों का एक बहुत बड़ा तबका इस व्यवस्था के प्रबल समर्थक हैं क्योंकि इसी से उनका स्वार्थ सि(होता है। इस आरोपित व्यवस्था में साम्राज्यवादी समूह के सामाजिक आधार हैं-इस देश के सारे सरमायेदार, बड़े व्यापारी, बड़े ठेकेदार, शेयर-दलाल और सट्टेबाज, राजनीतिक पार्टियों के चोटी के नेता, बड़े अपराधी और माफिया, नौकरशाह, बहुराष्ट्रीय निगमों के प्रबन्धक, कुछ अपवादों को छोड़कर सभी शीर्षस्थ बुि(जीवी, कलाकार तथा लाखों की पगार पाने वाले शीर्षस्थ मीडियाकर्मी और पत्रकार। इन सबकी कुल आबादी बमुश्किल 5 करोड़ है। बेशक ब्रिटिश साम्राज्यवादियों के सामाजिक आधार की तुलना में इनकी संख्या कहीं ज्यादा है, लेकिन देश की पूरी आबादी के लिहाज से ये मुट्ठीभर ही हैं।

10 करोड़ लोग ऐसे भी हैं जो अपनी आर्थिक-सामाजिक स्थिति सामान्य उपभोक्ता के तौर पर देश की क्रान्तिकारी आम जनता तथा साम्राज्यवादी समूह और उसके सामाजिक आधार के बीच ढुलमुल खड़े हैं। मेहनतकश मजदूर जमीन के छोटे टुकड़े से चिपके कंगाल और बदहाल किसान, दलित, आदिवासी और पिछड़े वर्ग की भारी आबादी, महिलायें और छात्रों-नौजवानों का बहुत बड़ा हिस्सा-ये सभी मिलकर क्रान्तिकारी जनता और क्रान्तिकारी शक्ति का निर्माण करते हैं।

साम्राज्यवादी समूह और उनके सहयोगी देशी सरमायदारों की प्राथमिकता अब देश का समग्र विकास और जनता की जिन्दगी में खुशहाली लाना नहीं है। साम्राज्यवादी यहाँ पूँजी के अति संचय और पुनर्निवेश की अपनी समस्या का हल करने आये हैं। कच्चे माल के रूप में देश के विपुल प्रकृितिक संसाधन और उत्पादन के काम में लगने के लिए करोड़ों बेरोजगार उन्हें कौड़ियों के मोल उपलब्ध हैं। साथ ही देश के 15-20 करोड़ उपभोक्ताओं का बाजार भी है। एक अरब से भी अधिक आबादी वाले देश में भले ही यह संख्या थोड़ी है लेकिन साम्राज्यवादियों के लिए ग्राहकों की एक नई जमात, काफी बड़ी है। 80-85 करोड़ भारतीय जो इस नयी व्यवस्था और उसके बाजार-तन्त्र से बहिष्कृत हैं, उनकी क्रयशक्ति बढ़ाना और उन्हें अपने बाजार में शामिल करना उनका सिरदर्द नहीं।

साम्राज्यवादी देशों के सरमायदारों से साँठ-गाँठ करके भारती सरमायेदार भी उन्नत तकनीक और पूँजी के अभाव तथा मुनाफे के विस्तार की अपनी समस्या का समाधान कर रहे हैं। दोनों का एक ही स्वार्थ है-इस देश की जनता की हड्डियों का चूरा बनाकर, उनके खून और मज्जा को निचोड़-निचोड़ कर अपने मुनाफे की हबस को पूरा करना।

देश का कृषि क्षेत्र जिस पर यहाँ की दो तिहाई आबादी प्रत्यक्ष रूप से निर्भर है, आज गम्भीर संकट का शिकार है। इस संकट का समाधान करना देश के हुक्रानों की कार्यसूची पर कहीं दूर-दूर तक नहीं है। इसके विपरीत वे इस तैयारी में लगे हुए हैं कि खेती को देशी- विदेशी सरमायादारों की लूट का चरागाह कैसे बनाया जाय।

उद्योग-धन्धों का विस्तार करने और उत्पादन बड़ाने पर जोर देने के बजाय जल्दी से जल्दी और बेहिसाब मुनाफा देने वाले क्षेत्रों को ये प्राथमिकता दी जा रही है नये उद्योगों में उच्च तकनीक और पूँजी केन्द्रित होने के चलते रोजगार के नये अवसर पैदा होने की सम्भावना बहुत कम है।

इन आर्थिक बदलावों के साथ-साथ आज हमारे समाज को भी एक नये साँचे में ढालने की कोशिश की जा रही है जिसकी नाभी में है पैसे की हवश। इसके लिए किसी भी तरह से मुनाफा कमाने की अन्धी दौड़ को प्रोत्साहित किया जा रहा है और मानवीय रिश्तों की एक नयी परिभाषा गढ़ी जा रही है। हर एक चीज खरीदने और बेचने की वस्तु में तब्दील की जा रही है-जीमर, जिन्दगी सब कुछ। इसके लिए सड़ी-गली परिश्चमी संसकृति को अपना आदर्श घोषित किया जा चुका है। एक तरफ हमारे समाज में व्याप्त सामन्ती मूल्य-मान्यताएँ व पतनशील संस्कृति, स्त्री और पुरूषों के बीच का भयावह अलगाव तथा दोस्ती, प्यार और सहानुभूति से वंचित नौजवानों की पूरी पीढ़ी है, तो दूसरी तरफ है मानव-गरिमा से रहित, बेलगाम, उच्छृंखल और पतित पश्चिमी संस्कृति। इन दोनो संस्कृतियों की खिचड़ी से एक ऐसी विषैली कुसंस्कृति पैदा हो रही है जो तेजी से हमारे समाज को पतन के गर्त में धकेलती जा रही है।

पश्चिम से आयातित तकनीक भी सिर्फ अमीरों के लिए मुनाफे का साधन बन रही है और आम समाज की समस्याओं को दूर करने के बजाय उसे बढ़ा ही रही है। टी. वी.-कम्प्यूटर (इण्टरनेट) अश्लीलता के पर्याय बनते जा रहे हैं।

बहुराष्ट्रीय कम्पनियों के विज्ञापनों में नारी देह का भोंड़ा प्रदर्शन सारी हदों को पार कर गया है। मुनाफा कमाने के लिए ईर्ष्या, द्वेष, सेक्स और लालच जैसी गंदी मनोवृत्तियों को जिस तरह बढ़ावा दिया जा रहा है, वह पूरे समाज के लिए चिन्ता का विषय है। आज जितनी तेजी से अपसंस्कृति अपने पाँव पसार रही है और लोक संस्कृति को धकेलकर बाहर करती जा रही है, उसी रफ़्तार से समाज का अमानवीयकरण होता जा रहा है। इस तरह अधिरचना (कला, संस्कृति, राजनीति, साहित्य और वैचारिक धारणा) को अपने अनुरूप ढालकर ही साम्राज्यवादी अपनी उत्पादन प्रणाली को भारत में स्थापित कर सकते हैं। हमारे समाज में ये विकृतियाँ बाहर से थोपी गई उत्पादन प्रणाली का सहउत्पाद है।

वैश्वीकरण के बाद से आर्थिक विकास का पैमाना बदल दिया गया। आर्थिक विकास की उफँची दर और सट्टेबाजी से बढ़ाये गये शेयर सूचकांक का हवाला दे देकर भारत को विश्व की महाशक्ति के झूठे ख्वाब दिखाये जाने लगे। अमरीकी संकट के प्रभाव ने 2008 की अन्तिम तिमाही में विकास के इन दोनों ही फर्जी पैमानों के बैलून पिचका दिये और विकास का नंगाड़ा पीटने वालों के चेहरे पर कालिख पोत दी।

यह सही है कि वैश्वीकरण के बाद अर्थव्यवस्था के सभी क्षेत्रों का सम्मलित विकास दर बढ़ा लेकिन अलग-अलग क्षेत्रों की स्थिति पर गौर करें तो यह स्पष्ट हो जायेगा कि हमारे देश और देश की बहुसंख्यक जनता से इस विकास का कोई लेना-देना नहीं है। 1990-91 से 2007-08 के बीच सकल घरेलू उत्पाद में खेती का हिस्सा 32 फीसदी से घटकर 17.8 फीसदी और उद्योग का हिस्सा 27 फीसदी से घटकर 19.4 फीसदी रह गया। दूसरी ओर इसी बीच सेवा क्षेत्र का हिस्सा 41 फीसदी से बढ़कर 62.9 फीसदी हो गया। सेवा के क्षेत्र में भवन-निर्माण, व्यापार, होटल, यातायात, संचार, वित्त, बीमा, स्थायी सम्पत्ति और व्यापारिक सेवाएँ इत्यादि शामिल हैं। 2001 से 2008 के बीच खेती का विकास दर 2.8 फीसदी, उद्योग का 7.1 फीसदी और सेवा क्षेत्र का 9 फीसदी था। सेवा क्षेत्र में भी सबसे उफँची विकास दर वित्त और वित्त से सम्बन्धित क्षेत्रों में ही रही है।

ये आँकड़े वैश्वीकरण के दौर में विकास की दिशा और शासक वर्गों की प्राथमिकता का पूरी तरह पर्दाफाश कर देते हैं। भारत की 70 फीसदी आबादी गाँवों में रहती है जिसमें से अधिकांश लोग खेती पर निर्भर हैं। ये आँकड़े बताते हैं कि

वैश्वीकरण के दौर में देश की कुल पैदावार में खेती का हिस्सा लगभग आधा हो गया और उसकी विकास दर भी सेवा क्षेत्र की तुलना में एक तिहाई से भी कम है। उद्योग की स्थिति भी बदतर हुई है अर्थव्यवस्था में उसकी हिस्से दारी भी इस दौरान काफी कम हुई है। खेती और उद्योग ही देश की बहुसंख्य आबादी का भरण पोषण करते हैं। उत्पादन की कीमत पर सेवा क्षेत्र का बेमेल और विषमतापूर्ण विकास इस बात का प्रमाण है कि यह तथाकथित विकास साम्राज्यवादी वित्तीय पूँजी द्वारा पैदा किये गये सट्टेबाजी के बुलबुलों का नतीजा है। इसने उफँचे वेतन और विलासितापूर्ण जीवन शैली वाला एक विशिष्ट वर्ग पैदा किया है जो दुनिया के वित्तीय दायरे से जुड़ा है, लेकिन देश की वास्तविक अर्थव्यवस्था से कुछ भी लेना-देना नहीं है।

जिस विकास का इतना ढोल पीटा गया, उसका देश की अधिकांश जनता के लिए कोई मतलब नहीं है। 42 फीसदी जनता (45.6 करोड़ लोग) सरकारी गरीबी रेखा से नीचे जीने को अभिसप्त हैं, जबकि गरीबी रेखा का सरकारी पैमाना इतना नीचा है कि अर्थशास्त्री इसे 'कंगाली-रेखा' कहते हैं। असंगठित क्षेत्र आयोग की रिपोर्ट के मुताबिक देश की 77 फीसदी जनता (80 करोड़ लोग) 20 रूपये प्रतिदिन पर गुजारा करते हैं। काम करने की आयु वाले 58 फीसदी लोग बेरोजगार हैं। इस विकास ने मुट्ठी भर लोगों के लिए स्वर्ग का निर्माण किया तो दूसरी ओर करोड़ो लोगों की पहले से ही बदहाल जिंदगी को साक्षात नरक में बदल दिया। जिस दौरान भारत में करोड़पतियों-अरबपतियों की संख्या में इजाफे की गर्वीली खबरें मीडिया की सुर्खियों में थी, उसी समय लाखों किसानों ने आत्महत्याएँ, करोड़ों बच्चे भूख और कुपोषण के शिकार हुए और करोड़ों लोग ऐसी बीमारियों से मर गये जिनका आसानी से इलाज सम्भव है। इस तरह बड़े पूँजीपतियों को बेतहाशा सब्सिडी देकर अर्थव्यवस्था के शीर्ष पर पहुँचाया गया तो दूसरी ओर गरीबों के मुँह से निवाला छीन कर उन्हें मौत की ओर धकेल दिया गया।

इन सच्चाईयों की रोशनी में विकास के गुब्बारे को देखा जाय तो यह समझना मुश्किल नहीं कि विश्व पूँजीवादी संकट को भारत सहित तीसरी दुनिया की जनता पर थोपने के अलावा कुछ नहीं था। अमरीकी संकट ने 'आर्थिक सुधार' के पैरोकारों की विदेशी पूँजी और विदेशी बाजार पर निर्भरता की भी कलई खोल दी क्योंकि सबसे पहला झटका उन्हीं क्षेत्रों को लगा जो निर्यात करके डॉलर कमाने में मशगूल थे।

आखिर विकल्प क्या है?

1990 में दुनिया के वर्ग शक्ति संतुलन में बदलाव के बाद साम्राज्यवादी अपनी सामयिक जीत के उन्माद में 'समाजवाद मर गया', 'इतिहास का अन्त हो गया' और 'पूँजीवाद का कोई विकल्प नहीं' की रट लगा रहे थे। लेकिन इस जस्न को 10 साल भी नहीं हुए कि अमरीका में विश्व पूँजीवाद के जुलूस में बढ़-चढ़ कर शामिल, पूर्वी एशिया के देशों में आर्थिक संकटों का तांता लग गया। इसमे 1,000 अरब डॉलर के बराबर की आभासी पूँजी स्वाहा हो गयी। इनमें से अधिकांश देशों की मुद्रा विनिमय दर डॉलर के बराबर थी और इन और इन अर्थव्यवस्थाओं को 'एशियाई टाइगर' कहा जाता था। अमरीकियों ने अपने यहाँ सस्ते व्याज पर कर्ज लेकर इन देशों में सट्टेबाजी शुरू की और इन अर्थव्यवस्थाओं को एक-एक करके डुबो दिया। जापान, मैक्सिको, रूस, अर्जेंटिना और खुद अमरीका में भी आर्थिक विध्वंश का सिलसिला लगातार जारी रहा।

वैश्वीकरण की नयी परिस्थितियों ने विश्व स्तर पर पूँजीवाद के फलने-फूलने और लगातार आगे बढ़ते रहने का भरपूर अवसर था। उनके आगे कोई विरोध, कोई चुनौती नहीं थी, फिर भी निरन्तर विस्तार की जगह गहराता संकट उसके आगे मुँह बाये खड़ा था।

विश्व साम्राज्यवाद आज किसी विरोधी ताकत के आगे नहीं, बल्कि अपनी ही मुनाफे की हवश के दुष्परिणामों के आगे लाचार है जो विस्फोटक रूप धारण किये उसक सामने खड़ी है। ऐसा होना ही था, क्योंकि पूँजीवाद अपनी लूट-खसोट के चलते जो विषमता पैदा करता है उसी के चलते उसके विस्तार की सम्भावना पर लगाम लग जाती है। मुट्ठीभर लोगों द्वारा बेपनाह और वहशियाना उपभोग के बावजूद समाज के बहुसंख्यक मेहनतकशों की बदहाली के चलते पूरा माल खपाना और शोषण से पैदा हुए अतिरिक्त मूल्य की वसूली करना सम्भव नहीं। बहुसंख्यक जनता को हाशिए पर फेक दिये जाने-उन्हें उत्पादन-शोषण और उपभोग के अनिवार्य

परिपथ में शामिल न कर पाने के चलते पूँजीवाद का संकट में फँसना अनिवार्य है।

दुनियाभर में मजदूर वर्ग के उफपर वर्चश्व कायम कर लेने के बाद साम्राज्यवाद ने उनकी सामाजिक सुरक्षा और रोजगार की हिफाजद को खत्म कर दिया, और मजदूरों को कंगाली में जीने-मरने तक नीचे गिरा दिया। तीसरी दुनिया के गरीब देशों को उसने दुबारा कच्चेमाल के आपूर्तिकर्ता की पुरानी स्थिति में ला दिया और कुछ विकासशील देशों को अपने मातहत ठेके पर काम करने वाले कारिन्दों में तब्दील कर लिया।

साम्राज्यवादी लूट ने दुनिया के अधिकांश आबादी और गरीब देशों को साक्षात नरक मे ं तब्दील कर दिया है। सामाजिक आर्थिक विनाश के साथ-साथ उसने दुनियाभर में प्राकृतिक सम्पदाओं का बेतहाशा दोहन और पर्यावरण की तबाही को तेज कर दिया। अपनी करतूतों से उसने यह साबित कर दिया कि उसका एक दिन भी बने रहना इंसानियत और प्रकृति के उफपर असह्य बोझ है। इसका अन्त जरूरी है, वर्ना यह धरती का अन्त कर देगा।

मौजूदा आर्थिक संकट की सबसे ज्यादा कीमत सबसे निचले पायदान पर खड़े लोगों को ही चुकाना पड़ेगा।

मुनाफे का निजीकरण और घाटे का सामाजीकरण पूँजीवाद का पुराना धन्धा है जिसे बार-बार दोहराया जाता है दुनिया भर की जनता को एक बार फिर कहा जा रहा है कि संकट की घड़ी में राष्ट्र (पूँजीपतियों) का सहयोग करें। जनता को विभ्रम से निकालने की जिम्मेदारी इतिहास चेतना से लैस बु(जीवियों की है इस पूँजीवादी लूट तन्त्र का भण्डाफोड़ करने और जनता को हकीकत बताने की जरूरत है।

वर्तमान आर्थिक संकट जिसने पूरी दुनिया को अपनी चपेट में ले लिया है, कोई 'प्राकृतिक आपदा' नहीं है। इसका कारण लूट और मुनाफे पर टिकी यह साम्राज्यवादी पूँजीवादी व्यवस्था है। व्यवस्था के शीर्ष पर बैठे लोगों ने इस संकट को बुलाया, उससे भरपूर दौलत कमाई और अब इसका बोझ पूरे समाज पर, खास तौर से मेहनतकश गरीब जनता पर डाल रहे हैं।

यह आम मेहनतकश को जनता और पूरी मानव जाति के हित में है कि पूरी

व्यवस्था का बहुसंख्य मेहनतकश जनता के पक्ष में पुनर्गठन किया जाय। सट्टेबाजी की जगह उत्पादक कार्यवाहियों को पुनर्उत्पादित किया जाय चन्द लोगों को मुनाफे और लूट की जगह बहुजन हिताय पर आधारित उत्पादन व्यवस्था कायम की जाय।

पूँजीवादी व्यवस्था आज जनता में व्याप्त जड़ता और निष्क्रयता का फायदा उठाते हुए और अपनी शासन सत्ता का इस्तेमाल करके पूँजीवादी सामान्य शोषण को खुली दकेती में बदल चुकी है। अगर आम जनता की ओर से संगठित प्रतिरोध न हो, तो इस व्यवस्था के संचालक अपने संकट का बोझ लगातार मेहनतकशों पर लादते जायेंगे।

संगठित प्रतिरोध और सामाजिक बदलावो के द्वारा समूची जनता की बुनियादी जरूरातें-भोजन, वस्त्र, आवास, रोजगार, दवा, शिक्षा और स्वच्छ पर्यावरण की गारन्टी करने वाली व्यवस्था की स्थापना करना जरूरी है। जो व्यवस्था अपने उफपर यह जिम्मेदारी ले लेगी, उसमें मन्दी और संकट कभी नहीं आयेगी। प्राकृतिक और मानव संसाधनों का इस्तेमाल समूची जनता के लिए होना चाहिए न कि मुट्ठीभर मुनाफाखोरों के निजी स्वार्थ के लिए। जिस व्यवस्था के रहनुमा पूँजी संचय के लिए लोभ-लालच और शोषण की खुली वकालत करते हों-गलत को सही और सही को गलत बताते हों उन्हें बनाये रखने का कोई औचित्य नहीं। सुधारवादी आज बेहतर और तार्किक पूँजीवाद की वकालत करते हुए नाना प्रकार के सुधारों की घोषणा कर रहे हैं लेकिन उसमें भी मन्दी से नहीं बचा जा सकता। सवाल इस पूँजीवाद को नष्ट करके एक बेहतर तार्किक और टिकाउफ समाज व्यवस्था का विकल्प तलाशने का है।